अनन्तर/जनसत्ता/२९ जुलाई, २००६

अपने पराए

ओम थानवी

एक रोज पहले इफ्तिखार गीलानी इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में साथ थे। शुक्रवार को बगल के हैबिटाट सेंटर में मैं उन्हें मुबारकबाद पेश करने की राह देखता था। वे टीवी वालों को इंटरव्यू देने से फुरसत नहीं पा रहे थे। यह देखकर मैं खुश था और भीतर से कुछ भावुक भी कि जिस पत्रकार बिरादरी ने अपने ही साथी की बुरे वक्त में किरकिरी की, आज जैसे प्रायश्चित करती दिखाई दे रही है। भले ही अनायास। पत्रकारिता में ऐसे दृश्य भूले ही नजर आते हैं जब पत्रकार किसी दूसरे पत्रकार का इंटरव्यू ले रहे हों!

यह गीलानी की किताब 'तिहाड़ में मेरे शब-ओ-रोज' के लोकार्पण का मौका था जिसके साथ पेंगुइन बुक्स ने उर्दू की दुनिया में प्रवेश किया है। यह किताब 'जेल में कटे वो दिन' नाम से हिंदी में भी प्रकाशित की गई है। इन दोनों अनुवादों का अंग्रेजी मूल 'माइ डेज इन प्रिजन' पिछले साल छपा था। एक के बाद एक उसके चार संस्करणों ने शायद प्रकाशक को हिंदी-उर्दू की बड़ी दुनिया का अहसास दिलाया हो।

गीलानी के नाम से अगर आपको संसद पर हमले के मुकदमे वाले प्रो. गीलानी- जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने बरी कर दिया था- का खयाल आया हो तो उसे जरूर सुधार लें। इफ्तिखार गीलानी पत्रकार हैं, जम्मू से निकलने वाले दैनिक 'कश्मीर टाइम्स' के दिल्ली ब्यूरो प्रमुख। वे एक नेक, विनम्र और हंसमुख पत्रकार हैं। चार साल पहले उन पर शासन का कहर बरपा। उस वक्त देश में वाजपेयी सरकार थी। आडवाणी गृहमंत्री होकर उप-प्रधानमंत्री हो गए थे। बताते हैं कश्मीर में हुर्रियत नेता सैयद अली शाह गीलानी को घेरने के फेर में उनके दामाद इफ्तिखार पर हाथ डाला गया क्योंकि सैयद गीलानी के बेटे पहुंच से दूर थे। इफ्तिखार गिरफ्तारी के साथ ही पाकिस्तान के जासूस ठहरा दिए गए। इसके साथ शुरू हुआ बदनामी, जिल्लत, यातना और दुष्प्रचार का ऐसा सिलसिला जिसकी मिसाल ढूंढ़ना मुश्किल होगा।

इफ्तिखार के खिलाफ दर्ज मुकदमा लचर था। 'कश्मीर में आजादी और नागरिक अधिकारों का हनन' नामक एक पुस्तिका की सामग्री उनके कंप्यूटर में मिली थी। असल में उस पुस्तिका के ये सिर्फ तीन परिशिष्ट थे। गीलानी ने उन्हें इंटरनेट से उतारा था। कश्मीर में नागरिक अधिकारों के हनन के नाम पर पाकिस्तान में बहुत-सी सामग्री प्रकाशित होती है जिनमें यह पुस्तिका भी थी। गीलानी पर सदियों पुराने शासकीय गोपनीयता कानून के तहत देश की सुरक्षा के खिलाफ संवेदनशील दस्तावेज रखने का आरोप लगा।

लेकिन पूरी मशक्कत के बाद अदालत में यह साबित नहीं किया जा सका कि एक छपी हुई किताब, जो इंटरनेट पर दुनिया के हर कोने में उपलब्ध हो, के तीन परिशिष्ट घर में रखना किस तरह देश की सुरक्षा के लिए खतरे का सामान है। बाद में पुलिस की दरियाफ्त पर रक्षा मंत्रालय के खुफिया महकमे ने लिखकर राय दी कि 'दस्तावेज' में हमारी सुरक्षा से जुड़ी कोई जानकारी नहीं है, वह महज सुनी-सुनाई जानकारी पर आधारित है। लेकिन तब तक गीलानी पुलिस और मीडिया की नजर में 'देश के गद्दार' बन गए थे। दोनों तरफ से उन पर बतौर आईएसआई जासूस काम करने और जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा बलों और सेना से जुड़ी जानकारी जमा करने के आरोप लग चुके थे। दोनों ने मिलकर उन्हें वहां पहुंचा दिया था, जहां से अपनी दुनिया में लौट आना किसी के लिए भी मुश्किल काम होता। अपने धैर्य, सहनशक्ति और चंद सहृदय पत्रकार दोस्तों की मदद से इफ्तिखार गीलानी ने इसे मुमकिन कर दिखाया।

एडीटर्स गिल्ड की एक जांच के सिलसिले में इफ्तिखार गीलानी से मेरी पहली मुलाकात गए साल के आखिरी दिनों में हुई। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के इस बयान पर कि पत्रकारिता में गैर-जिम्मेवारी का आलम

तारी है, गिल्ड ने अजित भट्टाचार्य की अध्यक्षता में एक जांच समिति बनाई थी। मैं उसका एक सदस्य था। गीलानी का मामला सबके ध्यान में था। हमने उन्हें बुलाया। आमने-सामने बैठकर उनकी आपबीती सुनी। मुझे हिंदी का कोई मुहावरा अपने उस अनुभव को बयान करने के लिए पूरा नहीं जान पड़ता। इतना ही कह सकता हूं कि गीलानी का बयान सुनकर मेरा रोम-रोम सिहरा। डीटीसी बसों में धक्के खाते हुए खबरनवीसी करता एक युवक, बसर के लिए कई अखबारों के लिए एक साथ खटता हुआ। सुबह चार बजे आयकर छापे के बहाने कश्मीर की खुफिया पुलिस का छापा। गिरफ्तारी। जेल। सात महीने का नरक। कोई जमानत नहीं। फिर एक रोज अचानक सरकार की तरफ से मुकदमा वापस। सारी इज्जत उतार कर बाइज्जत बरी।

इस तमाम सिलसिले में तिहाड़ की दास्तान बहुत दर्दनाक है। जिल्लत और यंत्रणा के इतने वाकये हैं कि गीलानी उन सबको अपनी किताब में शायद ही दर्ज कर पाए हों। गीलानी कहते हैं, पुलिस ने मुझे गिरफ्तार किया, पर यातना नहीं दी। जुल्म और सितम का सिलसिला तिहाड़ में कदम रखने के बाद ही शुरू हुआ। वह सच्चे-झूठे अपराधियों और क्रूर जेलकर्मियों की छोटी-सी बंद दुनिया है। बाहर की दुनिया से उसे अखबार और टीवी जोड़ते हैं, जिन पर उन दिनों 'गद्दार गीलानी' की खबरों की बहार थी। कैदी, जेलर और उनके कारिंदे जब-जब गीलानी की 'देश विरोधी' करतूतों का 'ब्योरा' सुनते, उनका खून खौल उठता। गीलानी उनके सामने थे। उन्हें 'सबक' सिखाने की उनमें होड़ मच जाती। जेल प्रशासन ने अपने गुस्से के चलते उन्हें मजदूरी पर लगा दिया, जबकि विचाराधीन कैदियों को इससे अलग रखा जाता है। गीलानी ने चालीस रोज गड्ढे खोदे और मिट्टी ढोई।

'तिहाड़ की जिंदगी' अध्याय में गीलानी ने जेल के अनुभवों का ब्योरा दिया है। उसमें आपको जेल की बाकी जिंदगी, वहां की फिरकापरस्ती, भ्रष्टाचार, गैर-सरकारी संस्थाओं व बाबा-साधुओं के प्रपंच, कैदियों के मनोविज्ञान और किरण बेदी के सुधार कार्यक्रमों की असलियत का पता चलेगा। मैं यहां तिहाड़ में गीलानी के साथ पहले रोज- जेल में दाखिल होने के फौरन बाद- हुए हादसे का जिक्र जरूर करना चाहता हूं जब दस-ग्यारह लोगों के जत्थे ने 'गद्दार पाकिस्तानी एजेंट' कहते हुए इस निरीह पत्रकार को सहायक जेल अधीक्षक के सामने धुना। जेलकर्मियों के साथ कुछ मुंह-लगे कैदी भी थे। गीलानी इस हमले में बेहोश हो गए। होश आने पर उन्हें अपनी लहूलुहान कमीज से जेल के पाखानों की सफाई करने को कहा गया। बाद में उन्हें वह कमीज पहनने को मजबूर किया गया। ''जून की गरमी में तीन रोज मुझे उसी कमीज में रखा। मैंने जहन्नुम का नाम सुना है। उस रोज उसे वहां साक्षात देखा'', गीलानी ने मुझसे बातचीत के दौरान कहा।

किताब में कई प्रसंग ऐसे हैं जो भीतर तक झकझोर देते हैं। किताब का उर्दू तर्जुमा करने वाले अदीब नुसरत जहीर का कहना है कि गीलानी की बीवी आनिसा से जेल में कुछ रोज बाद हुई मुलाकात के वर्णन ने उन्हें रुला दिया। मुझे यकीन है जहीर के अनुभव से गुजरने वाले पाठक इफ्तिखार को बड़ी तादाद में मिलेंगे। यही उनकी उपलब्धि होगी और सहृदय संसार में लौट आने का असल सुकून भी।

ऐसे ही एक हवाले ने देर तक मुझे एक ठौर रोके रखा। नम आंखों का धुंधलापन देर तक जाता न था। गीलानी लिखते हैं, ''मीडिया के प्रचार ने मेरे पड़ोसियों को इस कदर खौफजदा कर दिया था कि वे अपने बच्चों को मेरी चार साल की बेटी अब्याज के साथ खेलने देने से भी परहेज करने लगे थे।'' जरा उस बच्ची की आंख से दुनिया की बेरुखी की कल्पना करें जिसे न उसके पिता के नरक के ठिकाने की खबर है न मां पर गुजर रही वेदना की; दोनों की गैर-मौजूदगी में पास-पड़ोस को छोड़कर उसके पास बचता क्या था, जिसके साथ वह मासूम उम्मीद और हौसले का साझा कर सकती हो!

मुझे लगता है इफ्तिखार की आपबीती पर एक सशक्त फिल्म बन सकती है। कोई गोविंद निहलानी तक यह राय पहुंचाए।

मीडिया को लेकर गीलानी हमेशा तल्ख बात करते हों, ऐसा नहीं है। जल खंबाटा, उमाकांत लखेड़ा और सिद्धार्थ वरदराजन सहित अनेक पत्रकारों की मदद का वे जिक्र करते हैं। लालकृष्ण आडवाणी की उदासीनता के साथ सुषमा स्वराज की संवेदनशीलता और जॉर्ज फर्नांडीज- जो गीलानी की किताब के लोकार्पण आयोजन में शरीक थे- के रवैये की भी तारीफ करते हैं। लेकिन मीडिया के प्रति उनकी नाराजगी वाजिब है। अपराध की खबरें- जो इन दिनों बड़ी प्रमुखता से छापी जाती हैं- लिखने वाले पत्रकार पुलिस से संपर्क रखते हुए आमतौर पर उसी के पक्ष की खबरें देने लगते हैं, भले ही वे खबरें एकतरफा और अपुष्ट हों। मुलजिम को वे मुजरिम मानकर चलते हैं। उसके पक्ष से पत्रकार शायद ही सोचते होंगे। शोषित का उचित पक्ष सामने न रखकर

इस तरह जाने-अनजाने कई दफा वे खुद शोषण का एक हिस्सा हो जाते हैं।

गिल्ड की जांच के दौरान गीलानी ने मुझे ऐसी खबरों का एक पुलिंदा दिया था जिन्होंने उनके मामले में जेल अधिकारियों और कैदियों से लेकर समाज और अदालत तक को गुमराह किया। मैंने वे खबरें निकाल कर फिर देखीं। कुछ खबरों का जिक्र- शायद जगह की वजह से- किताब में नहीं है। पत्रकारिता की गैर-जिम्मेवारी का तेवर इन खबरों में निराला है। इनमें एक-आध अपवाद को छोड़कर कभी किसी अखबार या टीवी ने भूल-सुधार नहीं किया। माफी किसी ने नहीं मांगी।

सबसे पहले संगीन गलतबयानी दिल्ली के एक मोटे अंग्रेजी अखबार ने की थी। गीलानी की गिरफ्तारी के अगले रोज उसमें खबर छपी कि गीलानी ने चीफ मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट की अदालत में स्वीकार कर लिया है, वे पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई के जासूस हैं। गीलानी ने ऐसा कोई बयान नहीं दिया था, न कोई बयान अदालत में दर्ज हुआ था। झूठी खबर अदालत का भी अपमान थी। इसके बाद अखबारों में गढ़ी हुई खबरें छा गईं। इफ्तिखार गीलानी के आतंकवादियों से संबंध होने, बेहिसाब संपत्ति और विदेशी धन रखने, कर चोरी करने और अश्लील सामग्री पढ़ने के ढेर आरोप बगैर किसी स्रोत के छपते रहे। भाजपा से सहानुभूति रखने वाले पत्रकार इस मुहिम में दुगुने जोश में थे। ऐसे एक अंग्रेजी अखबार ने ''उच्च पुलिस सूत्रों'' के हवाले से लिखा कि इफ्तिखार पाकिस्तान में बैठे हिज्बुल मुजाहिद्दीन के मुख्य कमांडर सैयद सलाहुद्दीन का आदमी है। एक पत्रिका ने लिखा कि गीलानी पाकिस्तान के दो अखबारों का स्थानीय संपादक भी है। भारत का नागरिक पाकिस्तान में संपादक कैसे हो सकता है? पाकिस्तान के अखबार भी भारत में प्रकाशित नहीं हो सकते। सबसे मजेदार काम एक हिंदी दैनिक ने किया। उसने खबर छापी: ''इफ्तिखार गिरफ्तार, बीवी आनिसा फरार''। उधर खबर के साथ हिरासत में इफ्तिखार से मिलकर बाहर आते हुए बीवी आनिसा की तस्वीर छपी हुई थी!

इफ्तिखार के मुताबिक सिर्फ एक अंग्रेजी चैनल को छोड़कर सारे समाचार चैनल भी जैसे अखबारों के साथ कदमताल कर रहे थे। एक चैनल कहता था वे फरार हैं। दूसरे पर उनकी बीवी फरार थी। तीसरे के अनुसार उनसे गहन पूछताछ जारी थी। एक तेज चैनल का संवाददाता गीलानी के घर के बाहर डेरा जमाए बैठा था और नित नई जानकारियां ईजाद कर रहा था। उसने कहा, घर में एक लैपटाप से खुफिया रक्षा दस्तावेज बरामद हुए हैं। जबकि गीलानी ने लैपटाप कभी रखा ही नहीं। इफ्तिखार ने बताया, ''घर में छापा मारने वाले टीवी देखकर हंस रहे थे। घर के भीतर मैं और बीवी मौजूद थे और दीवार के दूसरी तरफ खबर दी जा रही थी कि गीलानी फरार है। मैंने एक बार सोचा, दरवाजा खोलकर लाइव प्रसारण कर रहे उस पत्रकार से हाथ मिला आऊं! लेकिन तब गिरफ्तार न होते हुए भी हमारी हालत कैद जैसी थी।''

इफ्तिखार बड़े अफसोस भरे स्वर में कहते हैं कि जेल में उन्होंने जो अत्याचार झेला, वह 'मीडिया ट्रायल' का नतीजा था। ''पत्रकार के शब्द का लोग इतना भरोसा करते हैं, इसका अहसास मुझे पहले न था। और न इसका कि हम अपने फर्ज को कितने हलके ढंग से लेते हैं!''

पत्रकारों की ज्यादती की शिकायत आम लोग अक्सर करते हैं। एक पत्रकार अपनी जमात से इस कदर आहत हुआ हो, ऐसे वाकये कम मिलेंगे। इफ्तिखार गीलानी जैसा शायद ही मिले।

अब एक अलग मामला। यह भी पत्रकारिता के बेहाल होते हाल से जुड़ा है। अंग्रेजी अखबारों के पन्ने ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं, उनका कद घटता जाता है। जितना उन पर रंग चढ़ता है, वे बदरंग होते जाते हैं। कुछ अखबारों का सारा संपादकीय विवेक तो जैसे इसी फिक्र में सिमट कर रह गया है कि दुनिया के किस कोने में शराब की कैसी महक पाई जाती है या किस सात-तारा होटल का खानसामा झींगामछली किस हुनर से पकाता है। यह सरोकार उस हिंदुस्तान में नमूदार होता है जहां ज्यादातर लोग गरीबी रेखा के दूसरी तरफ आबाद हैं, आए साल जहां अकाल पड़ता है और कुपोषण लाखों-लाख को सीधे मौत की तरफ ले जाता है।

ऐसे परिदृश्य में मुझे खास हैरानी नहीं हुई जब गए शनिवार मोटे अंग्रेजी अखबार ने- जिसने गीलानी के जुर्म-कबूल की झूठी खबर छापी थी- हिंदी के एक वरिष्ठ कवि की तीन रंगीन तस्वीरें एक साथ इस बड़े-से शीर्षक के साथ छापीं: ''खाओ, पीओ, खिसको की कला''। तस्वीरें इतिहासकार शाहिद अमीन की चौरीचौरा पर छपी एक किताब के विमोचन समारोह की खबर के साथ छापी गईं। शहर की गतिविधियों पर केंद्रित रहने

वाले अखबार के खंड में समारोह के संक्षिप्त ब्योरे के साथ पांच तस्वीरें और हैं। जैसा कि ऐसे आयोजनों में होता है, और लोग भी हाथों में गिलास लिए गपशप में मशगूल हैं। सिर्फ हिंदी कवि की तस्वीरें एकल हैं। इनके एक तरफ कवि का नाम देकर लिखा गया है: 'ये दिल मांगे मोर'। जैसे इतना काफी न हो, तीनों तस्वीरों में हरेक के नीचे ये फिकरे हैं: जल्दी-जल्दी खाओ: जितने कबाब ठूंस सकते हो, ठूंसो; पीओ और चबाओ: गले के नीचे उतारना है, बैरे से वाइन झपटो; हरदम दोनों हाथ कबाब और शराब से भरपूर रखो।

यह एक कवि का नहीं, हिंदी का मजाक है। अंग्रेजी मानसिकता में, साहित्य हो चाहे पत्रकारिता, हिंदी वालों को किस तिरस्कार से देखा जाता है, हम सब जानते हैं। इस प्रसंग में खास बात यह है कि वे कवि हिंदी में अपेक्षया खुले हाथ वाले माने जाते हैं और दूसरे अतिथियों की तरह आयोजन में आमंत्रित थे। जाहिर है, खान-पान अकेले उन्हीं को नहीं परोसा गया होगा। फिर छायाकार- और बाद में संपादक- उन्हीं पर क्यों मेहरबान हुए? क्या हिंदी के व्यक्ति का कौर मुंह में रखने या चबाने का तरीका अलग होता है? फिर इस किस्म की तस्वीरों में कोई सुरुचि हो सकती है? मगर, सुरुचि न होने का गम आज कब किसी को सताता है!

पिछले बरसों की अखबारी 'क्रांति' में इतने कारनामे हमारे देखने में आए हैं कि उन्हें बर्दाश्त करने की कुछ आदत हो चली है। लेकिन इस प्रसंग ने एक बार फिर सोचने को विवश किया कि हमारी पत्रकारिता आखिर किधर जा रही है? कोई दिशा देख और दिखा सकने वाले संपादक कहां चले गए? शामलाल जैसे संपादक अभी हमारे बीच हैं। मैंने कई बार यह कल्पना करने की विफल कोशिश की है कि पत्रकारिता के इस हश्र पर आज वे किस तरह सोचते होंगे!

कहा जा सकता है कि यह पेज-३ की पत्रकारिता है। इसे देखकर इतना दुबला क्यों हुआ जाय। मगर यह कोई दलील नहीं मानी जाएगी। विभिन्न रंग और तेवर रखते हुए भी पूरा अखबार एक होता है। इसीलिए उसका संपादक भी एक होता है। ऐसे में यह नहीं कहा जा सकता कि दिमाग ठीक सोचता है, आंखें शायद गलत देखती हैं या सिर्फ कदम भटक जाते हैं! नई पत्रकारिता में जानकारी के साथ मनोरंजन की जगह निकाल ली गई है, यहां तक शायद ठीक हो; लेकिन एक कवि ही नहीं, किसी भी व्यक्ति के खान-पान की बदनीयत भरी तस्वीरें उतारना और कतार बनाकर छापना बेतुका ही नहीं, भद्दी पत्रकारिता का नमूना है।

इस वाकये पर हिंदी लेखकों की प्रतिक्रिया जानकर मुझे और हैरत हुई। कुछ खुश नजर आए। कुछ की खुशी दबी रही, पर छुपी नहीं। अंग्रेजी का हिंदी से दुराव समझ में आता है; हिंदी का हिंदी से क्या बैर? असल में खेल राग-द्वेष का है। जो हिंदी के हितों के सामने बहुत पीछे रह जाना चाहिए। लेकिन मौका लगते ही यह आगे चला आता है। एक लेखक ने कहा, जिनकी तस्वीरें छपीं उनके अपने राग-द्वेष इतने रहे हैं कि लोग मौका पाकर खुश होते हैं। ऐसे मामले में भी खुशी! ऐसे राग-द्वेष और ऐसी खुशियां- चाहे जिनकी फितरत में हों- बीमार मानसिकता कही जाएगी। हिंदी में पारस्परिक सहिष्णुता निरंतर घट रही है। संकीर्णता पहले से व्याप्त है। कहीं विचार का घेरा है, कहीं इलाके का, कहीं कोई और। घेरे के भीतर घेरे की सुरक्षा है। बाहर दुश्मन हैं। हिंदी का अपना घेरा क्या अब भी कोई संभावना है?